P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-5* (Part-1) August- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

चुरू जिले में जल संग्रहण एवं प्रबन्धन

वन्दना सिंह गुर्जर
शोधार्थी,
भूगोल विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान

सारांश

एक ओर सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराना देश के अधिकांश भागों में एक बड़ी समस्या बनी हुई है। जब भी अनावृष्टि या वर्षा की कमी होती है तो जल का संकट और गहरा हो जाता है। प्रारम्भ में जल का दोहन बड़ी सावधानी से किया जाता था लेकिन बाद के विकास के क्रम में विभिन्न प्रकार से जल की मांग बढ़ने लगी। तीव्र जनसंख्या वृद्धि और शहरीकरण के कारण जल की मांग में अत्यधिक वृद्धि होने से जल संसाधन सीमित हो रहे हैं। विश्व में अभी तक जितने प्रकार के प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध है, उनमें से जल का सर्वप्रमुख स्थान है। ऋग्वेद में कहा गया है 'जल ही औषधि है जल रोगों का शत्रु है, यह सब व्याधियों का नाश करता है। केवल मानव विज्ञान ही नहीं बल्कि धर्म, पौराणिक कथाओं तथा शास्त्रों में भी जल की महत्ता का वर्णन है। मानव की विभिन्न सभ्यताओं से स्पष्ट है कि जल पर मानव जीवन का अस्तित्व निर्भर है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि महान प्राचीन सम्भताएं अधिक सघन वनस्पति क्षेत्रों में उद्भवित नहीं हुई बल्कि तुलनात्मक दृष्टि से शुष्क प्रदेशों में प्रस्फुटित हुई जहाँ मानव जल नियन्त्रित करने तथा विभिन्न मौसमों में नदियों से इष्टतम मात्र में जल प्राप्त करने में समर्थ था (अनिल, 1976, पृ. 15)।

मुख्य शब्द : जल संग्रहण एवं प्रबन्धन,जनसंख्या वृद्धि

प्रस्तावना

मनुष्य जल संसाधन का उपयोग विभिन्न रुपों में करता आ रहा है। यदि जल संसाधन को विश्व स्तर पर देखें तो हमारी पृथ्वी पर अथाह जलराशि विद्यमान है। केलर के अनुसार हमारी पृथ्वी पर विद्यमान सम्पूर्ण जलराशि 1386 मिलियन घन किलोमीटर है (पाठक, 2004, पृ. 39)। उपलब्ध जल संसाधन का उपयोग मुख्य रुप से पेयजल, सिंचाई, औद्योगिक प्रक्रम, हाईड्रॉलिक एवम् वाष्प शक्ति उत्पादन तथा अन्य अनेक प्रयोगों यथा लान, बाग तथा पार्क की सिंचाई, सड़क पर छिड़काव एवम् सफाई, आग बुझाने तथा मत्स्य पालन आदि में होता है। आधुनिक समुदाय में इसके अतिरिक्त मनोरंजन आदि अन्य उद्देश्यों में भी इसका प्रयोग होता है यथा तरणताल, वाटर पार्क, औद्योगिक अवशिष्ट, वातानुकूल प्रक्रम आदि में भी जल का उपयोग होता है। भारत के कृषि प्रधान देश होने के नाते सर्वाधिक पानी की खपत खेती में होती है, जो हमारे सकल पानी के उपयोग के 80 प्रतिशत के आस–पास बैठता है (रियोरडन, 1977, पृ. 548)।

जल मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अवयव है। समय एवम् स्थान के आधार पर जल के भिन्न–भिन्न उपयोग होते हैं। एक ओर भविष्य में ऐसी सम्भावनाएं है कि जल के अन्य उपयोग विकसित होते जायेंगे दूसरी ओर जल के अतिशय दोहन से जल स्त्रोत सूखते जायेंगे। अतः इसकी महती आवश्यकता है कि जल के प्रबन्धन के लिए जल संग्रहण तकनीकों का विकास किया जाये। (रियोरडन, 1977, पृ. 547)। मानव समाज जितना अधिक विकसित होता है, उतनी ही अधिक जल की आवश्यकता बढ़ती जाती है फलतः सार्वजनिक जल आपूर्ति एवम् उपभोग की समस्यायें जटिल से जटिलतर होती जाती है। इसलिए जल को संरक्षित करना आज का युगधर्म बन गया है।

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 5236 घनमीटर थी जो वर्तमान समय में घटकर 1900 से 2100 घनमीटर के मध्य रह गयी है। यह मात्र बहुत जल्द घटकर मात्र 1500 घनमीटर रह जाने की सम्भावना है। जल संसाधन मंत्रलय के अनुसार प्रति व्यक्ति 1700 घनमीटर से कम उपलब्धता जल के अभाव का संकेत माना जाता है (देव, 1953, पृ. 15)।

मानव जल का उपयोग स्वतन्त्र रुप से करता है, उसे इसका मूल्य लगभग न के बराबर लगता है। फलतः भूमिगत जल का अतिशय दोहन हो रहा है। जल के अतिशय दोहन के चलते न केवल धरातलीय स्वच्छ जल में कमी आ रही है बल्कि भूमिगत जल की मात्रा भी निरन्तर कम होती जा रही है। संयुक्त

राष्ट्र संघ ने भारत को पानी की गुणवत्ता एवम् उपलब्धता के मानकों के आधार पर 120वां स्थान दिया है। भारत वर्ष में 38 प्रतिशत नगरों में एवम् 82 प्रतिशत गांवों में जल को शुद्ध करने की व्यवस्था नहीं है। देश के लगभग 2 लाख 30 हजार गांव आज भी जल समस्याओं से ग्रस्त है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वच्छ पेयजल उपलब्ध होने पर अतिसार में 50 प्रतिशत तथा हैजे में 90 प्रतिशत तक की कमी लायी जा सकती है। स्वच्छ जल की सुविधा गरीब एवम् अमीर तथा जवान एवम् वृद्ध सबकी अनिवार्य आवश्यकता है। यदि इस मौलिक आवश्यकता को पूरा करने में स्थानीय निकाय असमर्थ रहे तो उस निकाय को शासन करने का कोई अधिकार नहीं है (पाठक, 2005, पृ. 1)।

भूमिगत जल के अतिशय दोहन एवम् जलस्तर के तेजी से गिरने पर पारिस्थितिकी असन्तुलन का खतरा भी मंडराने लगा है। भूमिगत जल की कमी से पृथ्वी की परतों में हवा का दबाव बढ़ जाने से भूकम्प की सम्भावना काफी बढ़ जाती है। बढ़ते जल संकट से न केवल कृषि क्षेत्र के विकास में गिरावट आ रही है अपितु इससे हमारे देश के अन्य संसाधन भी प्रभावित हो रहे हैं।

बढ़ती आवश्यकताओं ने भूमिगत जल स्तर की समस्या को काफी गम्भीर बना दिया है। भारत के कई राज्यों में जहाँ 150 से 200 फुट तक पानी मिल जाता था, वहीं अब नए बोरिंग 700 से 1000 फुट की गहराई तक किये जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अतिशय जल दोहन के कारण भूमिगत जल खतरे के बिन्दु से नीचे पहुंच गया है। भारत के ग्रामीणांचलों में ही नहीं वरन् नगरों में भी स्वच्छ जल की समस्या अभी भी विकराल है। अतः समय रहते इस ओर बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे यहां के निवासियों को स्वच्छ जल की आपूर्ति सुनिश्चित हो सके। ग्रामीण भारत में जल संसाधन की समस्या के समाधान हेतु राष्ट्रव्यापी प्रयासों के साथ पर्याप्त धन निवेश करने की आवश्यकता है। लगभग 0.92 लाख ग्रामों में दो किलोमीटर दूरी तक व 15 मीटर की गहराई तक जल उपलब्ध नहीं है तथा 0.62 लाख ग्रामों में विभिन्न स्वास्थ्य समस्याएं आयरन, फ्लोराइड आदि के कारण जनित हो रही है (राव, 1974, पृ. 51)।

मानसून की छोटी अवधि और वर्षा की कमी से राजस्थान देश का सर्वाधिक जल की कमी वाला प्रदेश बन गया है। राजस्थान में भारत के कुल क्षेत्रफल का 10ण्47 प्रतिशत हिस्सा तथा कुल आबादी का 5ण्6 प्रतिशत यहां निवास करता है जबकि देश के सतही जल संसाधनों का मात्र 1 प्रतिशत भाग ही यहां उपलब्ध है। भूगर्भीय जल में से 1ण्72 प्रतिशत जल ही राजस्थान में है और जो जल उपलब्ध है, उसमें से सतही जल मात्र 9 प्रतिशत और 91 प्रतिशत जल भूगर्भीय है। इसके अतिरिक्त 60 प्रतिशत सिंचाई और उद्योग के लिए भूगर्भ जल का अति दोहन हो रहा है। फलतः भूजल स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा तथा वर्षा की कमी के कारण जल का पुनर्भरण नहीं हो पा रहा है। राजस्थान में वर्षा की प्रकृति अनिश्चित एवम् भिन्नता वाली है। पिछले 10 वर्षों में से 5 वर्ष तो सूखे की चपेट में रहे हैं। राजस्थान में भूजल स्तर सन् 1970 से वर्तमान समय तक लगभग 1 से 4 मीटर प्रतिवर्ष की दर से गिर रहा है। भूजल के लगातार दोहन के कारण राज्य में 1994 में 12 खण्ड डार्क जोन के अन्तर्गत थे, वे अब बढ़कर 2008 में 90 हो गये हैं। जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति, औद्योगिकरण, वनों के विनाश से भूजल स्तर में तेजी से कमी होती जा रही है। जल संकट की इस समस्या से निजात पाने के लिए जलसंभर कार्यक्रमों का विकास किया जाना होगा।

भारत में जल संभर विकास कार्यक्रम मुख्यतः कृषि ग्रामीण विकास तथा पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा किया जाता है। एक सम्बद्ध जलीय इकाई होने के कारण जल संभर बहुमुखी प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन एवम् सतत् नियोजन के लिए काफी उपयोग इकाई माना जाता है। जल संभर विकास से जल की संभाविता में वृद्धि तथा कृषि का सतत् विकास हो सकता है। जल संभर प्रबन्धन में सतत् विकास का तात्पर्य जनता की सहभागिता तथा समाकलित प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से है। जल संभर कार्यक्रम को सफल करने हेतु जनता को सामूहिक प्रयास करने होंगे जिससे कृषि का उत्पादन बढ़ाया जा सके तथा जल की कमी वाले क्षेत्रों में जल की निरन्तर उपलब्धता को सम्भव बनाया जा सके। विश्व जल संभर परिषद के भूतपूर्व अध्यक्ष वैंडल गिलगर्ट के अनुसार किसी भी क्षेत्र में जल की संभाविता में वृद्धि तथा सतत् कृषि विकास के लिए जल संभर एक वैज्ञानिक उपाय है।

अध्ययन क्षेत्र में जल संसाधन के अविवेकपूर्ण दोहन एवम् जल प्रबन्धन सम्बन्धी सुविधाओं के अभाव में अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गयी है। अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या, भूजल का मशीनों एवम् विद्युत यन्त्रों द्वारा अन्धा–धुन्ध दोहन, कोई नदी नहीं होना, वर्षा की घटती मात्रा एवम् वर्ष में वर्षा दिनों का निरन्तर घटना, परम्परागत जल स्त्रोतों का उपयोग नहीं होने से जल स्तर गिरता चला जा रहा है तथा जल की गुणवत्ता में भी कमी आती जा रही है। फलतः इसका कृषि क्षेत्र पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। जल संसाधन की समस्या भविष्य में और अधिक विकराल रुप धारण कर लेगी, इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए हमें समस्या के निस्तारण हेतु सतत् प्रभावी प्रयास करने होंगे। मनुष्य सोना, चांदी, पैट्रोलियम के बिना जीवन जी सकता है परन्तु पानी के बिना जीवन असम्भव है। इसलिए समय की मांग है कि जल का उपयोग विवेकपूर्ण, सन्तुलित व नियमित ढंग से हो (मोदी, 2007, पृ. 8)।

भू–आकृतिक व जलीय तंत्र की निश्चित सीमा में संसाधनों का व्यवस्थित मूल्यांकन जल विभाजक उपागम के अन्तर्गत करना समीचीन प्रतीत होने लगा है। संसाधनों का विकास जल विभाजकों के विकास पर निर्भर करता है। चूंकि जल विभाजक अपने क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों को प्रत्यक्ष एवम् परोक्ष रुप से प्रभावित करते हैं। जल विभाजक क्षेत्रों में बेहतर भू उपयोग एवम् उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि, पानी के बहाव को नियन्त्रित कर, भूमि कटाव रोकने के कार्यो से ही जल विभाजक विकास इकाइयों में संसाधनों के प्रबन्धन द्वारा सतत् उत्पादकता प्राप्त की जा सकेगी। साथ ही मृदा, जल एवं वनस्पति संरक्षण के वांछनीय प्रयासों द्वारा ही सतत् विकास एवम्

पारिस्थितिकीय सन्तुलन स्थापित हो सकेगा, जो वर्तमान समय की बड़ी आवश्यकता है।

विषय का चयन

सतत् कृषि विकास को बनाये रखने के लिए भूमि एवं जल संसाधनों का मूल्यांकन करना अति आवश्यक है। उपलब्ध जल संभावित मूल्यांकन के आधार पर अध्ययन क्षेत्र का अधिकांश भाग धूमिल क्षेत्र में आ गया है। अनिश्चित वर्षा और उसके असन्तुलित वितरण के कारण फसल उत्पादन प्रायः असुरक्षित हो गया है क्योंकि वर्षा जल का अधिकतम भाग व्यर्थ प्रवाहित हो जाता है एवम् उसका समुचित उपयोग नहीं हो पाता है। अतः भूजल स्तर में निरन्तर गिरावट आ रही है। उपजाऊ मृदा जल के साथ प्रवाहित हो जाती है तथा कृषि योग्य भूमि बंजर होती जा रही है। जनसंख्या में वृद्धि के साथ भूमि पर बढ़ते दबाव के कारण चारागाह क्षेत्र भी सीमित होता जा रहा है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन की उपलब्धता में कमी दृष्टिगत होती है। भूजल स्तर में निरन्तर गिरावट से भूमि उपयोग प्रतिरुप, फसल चक्र व फसलों की कोटि में परिवर्तन दृष्टिगत होता है।

उपरोक्त समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए शोध प्रबन्ध के लिए ''चुरू जिले में जल संग्रहण एवं प्रबंधन'' विषय का चयन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र राजस्थान राज्य के अर्द्ध–शुष्क (राजस्थान बांगर) के अंतर्गत आता है। यहा पर औसतन वर्षा 30 से 50 सेमी के मध्य होती है एवं इस क्षेत्र में किसी भी प्रकार की कोई नदी नहीं है। अतः जल संग्रहण एवं प्रबंधन के लिए इस जिले का चयन किया गया है।

राजस्थान राज्य में चुरू जिला राजस्थन के उत्तर–पूर्व दिशा में फैला हुआ हैं इसका भौगोलिक विस्तार 27°24'' से 29°00'' उत्तरी अक्षांश व 73°40'' से 75° 41'' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। चुरू जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 16830 वर्ग कि0मी0 है।

लेकिन अब चुरू जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 13791.7 वर्ग कि0मी0 है क्योंकि 10 अप्रैल, 2001 से श्रीडूंगरगढ़ तहसील का विलय बीकाने जिले में कर दिया गया है। सम्पूर्ण जिले के क्षेत्रफल का 71.75 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्र तथा 28.25 प्रतिशत भाग नगरीय क्षेत्रफल के अर्न्तगत आता हैं। चुरू जिले के अर्न्तगत 6 तहसील आती हैं जो क्रमशः चुरू, सरदारशहर, रतनगढ़, सुजानगढ़, राजगढ़, तारानगर है।

किसी भी क्षेत्र के भूमि व जल संसाधनों की उपलब्धता पर वहां की भूगर्भिक संरचना का सीधा नियन्त्रण व प्रभाव परिलक्षित होता है किन्तु भूजल संसाधन उपलब्धता तो भूगर्भिक संरचना पर पूर्णतया निर्भर है। "Geological setting plays a very decisine role in the ground water possibilities in the terrain." (भारतीय भूगर्भिक सर्वेक्षण, 1967, पृ0 81) अर्थात् किसी भी प्रदेश में भौम जल संसाधनों की गुत्थी सुलझाने में उसकी भू–वैज्ञानिक संरचना बहुत ही निर्णायक भूमिका निर्वाह करती है। भौमजल की प्राप्ति और वितरण भू–वैज्ञानिक संरचना पर निर्भर है जैसे सी. दक्षिणामूर्ति का कथन है &"The occurrence and distribution of ground water depend depend upon characteristics of the geology of particular region." (दक्षिणामूर्ति और मिशेल, 1973, पृ0 75) इस प्रकार भौम जल का विस्तृत एवम् गहन अध्ययन के लिए वहां की भू–वैज्ञानिक संरचना का गहन अध्ययन अपरिहार्य है।

भूगर्भिक दृष्टि से चुरू जिला रेतीली आंधियों के कारण अंधकार में रहा। दिल्ली की उच्चस्तरीय चट्टानें जिनका प्रतिनिधित्व फिलाइट, स्लेट, क्वार्टजाईट से ढकी अजबगढ़ वर्ग की चट्टानों ने किया है जो डूंगरास, गोपालपुरा, चल्लु और बीरमसर के आसपास स्पष्ट दिखाई देती है। बाद वाली मलानी समूह की देशी चट्टानों का प्रतिनिधित्व मुख्य रूप से आसपास के चारो ओर के चट्टानी क्षेत्रों से होता है, जिसमें रायोलाइट चट्टान शामिल है। इसमें ज्वालामुखी समूह वाली कुछ चट्टाने रनीडसर पहाड़ी और लोदासर की दक्षिणी पहाड़ी तक दृष्टिगोचर होती है। मैग्नीशियम और चूने के पत्थर के छोटे–छोटे भण्ड़ार सुजानगढ़, श्रीडूंगरगढ़, राजगढ़ और चुरू तहसील में उपलब्ध है। इनका प्रयोग स्थानीय भवन निर्माण हेतू किया जाता है।

साहित्यावलोकन

जल संसाधन के अध्ययन में विभिन्न प्राकृतिक एवम् सामाजिक विज्ञान से जुड़े विद्वानों की गहरी अभिरुचि रही है। जल संसाधन के आंकलन, वितरण एवम् प्रबन्धन के क्षेत्र में भू–वैज्ञानिकों, जल वैज्ञानिकों, मौसमविदों तथा भूगोलवेत्ताओं द्वारा अनेक शोध कार्य किये गये तथा इससे सम्बन्धित ज्ञान तथा साहित्य को समृद्ध किया गया। प्रारम्भिक अध्ययनों में जहाँ जल संसाधन के आंकलन एवम् वितरण को अधिक महत्व दिया जाता रहा है, वहीं वर्तमान समय में जल संसाधन से सम्बन्धित समस्याओं विशेषकर जल की उपलब्धता में कमी और प्रदूषण को ध्यान में रखते हुए विगत कुछ दशकों से तत्सम्बन्धी अध्ययनों में जल संसाधन के आंकलन एवम् वितरण के साथ उसके संरक्षण एवम् प्रबन्धन से सम्बन्धित शोध पर विशेष बल दिया जा रहा है।

आचार्य, सिंह और शर्मा (1990) ने बताया कि जल का प्रबन्धन आज बढ़ती जनसंख्या, बढ़ते शहरीकरण के लिए अति–आवश्यक है। जल की मांग में निरन्तर वृद्धि और जल की गुणवत्ता में कमी को दूर करने के लिए जल संभर का विकास किया जाना चाहिए। ध्रुव (1990) ने बताया कि भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है, अतः वर्षा जल संग्रहण की तकनीकों पर बल दिया जाना चाहिए। लाल और मिलर (1990) ने भारत में सतत् कृषि विकास हेतु जल संग्रहण की आधुनिक तकनीकों के साथ परम्परागत तकनीकों पर भी बल दिया है। सतीश और सुन्दर (1990) ने सिंचाई प्रबन्धन के लिए बताया है कि इसे सामूहिक जन प्रयास के द्वारा ही सफल बनाया जा सकता है तथा सिंचाई का प्रबन्धन जल संग्रहण पर आधारित है जिसके तहत जल को संग्रहित करके शुष्क मौसम में भी कृषि के उपयोग में लिया जा सकता है।

पंत (1992) ने हिमालय क्षेत्र के अति पशुचारण और भूस्खलित क्षेत्रों का अध्ययन किया और यह बताया कि उपरोक्त कारणों से जो पारिस्थितिकीय असन्तुल पैदा

हुआ वह जल संभर कार्यक्रम को अपनाने से समाप्त हो गया। गुर्जर और माथुर (1992) ने जल की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए बताया कि आज जल का इतना अधिक व्यर्थ उपयोग हो रहा है कि आने वाले समय में जल की कमी होगी तथा जो जल वर्तमान में मौजूद है, उसकी गुणवत्ता में कमी होगी। अतः जल संग्रहण की तकनीकों पर बल दिया जाना चाहिए।

गुर्जर और गुप्ता (1993) ने बताया कि जल का इस तरीके से उपयोग करना चाहिए जिससे सतही व भूमिगत जल की मात्रा में वृद्धि हो तथा अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को निरन्तर जल की उपलब्धता बनी रहे। विस्वास, मोहम्मद और स्ट्राउट (1993) ने वर्तमान परिपेक्ष्य में बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि पर बढ़ते दबाव से सतत् कृषि विकास असम्भव होगा। इसी तरह से जल का उपयोग होता रहा तो भविष्य में जल संसाधनों की कमी होगी जिससे पर्यावरण में असन्तुलन पैदा होगा। अतः इन सभी समस्याओं के निवारण के लिए जल प्रबन्धन अनिवार्य है। मुर्थी (1993) ने हिमालय क्षेत्र के पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए जल संभर प्रबन्धन की उचित रीतियां बतायी। उन्होनें बताया कि जल संभर प्रबन्धन, प्राकृतिक संसाधनों के पारिस्थितिकीय सन्तुलन के प्रबन्धन के लिए वैज्ञानिक इकाई है।

सिंह, राय और कुमार (1994) ने जम्मू और कठुवा जिले में सिंचाई के लिए भूजल गुणवत्ता का आकलन किया। उत्तम गुणवत्ता वाले जल में प्रति हैक्टेयर उत्पादन को बढ़ाने की सम्भावना होती है। उन्होने बताया कि जल में कुल कठोरता अधिक हो तो जल कृषि के लिए उत्तम होता है। सिंह (1995) ने गुजरात राज्य के आनन्द जिले में जल की कमी को दूर करने तथा प्राकृतिक संसाधनों के नियोजन के लिए जल संभर प्रबन्धन कार्यक्रम पर बल दिया है। प्राकृतिक संसाधन जल, मृदा, वनस्पति का उचित संरक्षण जल संभर द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता हैं।

बूक्स, फोलोइट, ग्रीगरसेन और डी बेंगो (1997) ने सिंचाई की सुविधाओं में विस्तार हेतु जल संभर तकनीक पर बल दिया। इससे मृदा, जल तथा वनस्पति का समन्वित विकास होता है। पावर, मकगू और क्लेरेन (1997) ने तंजानिया के इरिंग प्रदेश के जल संभर कार्यक्रम पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इस प्रदेश में जल संभर कार्यक्रम की सफलता के पीछे जन सहभागिता प्रमुख कारण था। अग्रवाल (1997) ने तरुण भारत संघ द्वारा अलवर जिले के 36 ग्राम में हुए जल संभर कार्यक्रम की प्रगति की रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें यह बताया कि शुष्क मौसम में भी कृषि कार्य किया जाता है तथा इस कार्यक्रम से अधिकांश लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ।

टाइडमैन (2000) ने भारतीय दशाओं में जल संभर प्रबन्धन के विकास के लिए विभिन्न विधियों को बताया है। मृदा व जल संसाधन का मानव विकास के लिए अति महत्व है और जल की निरन्तर आपूर्ति ही किसी भी क्षेत्र के विकास को निर्धारित करती है। मोहिल (2000) ने जल प्रबन्धन पर जोर देते हुए कहा है कि जल, मृदा तथा वनस्पति का संरक्षण ही कृषि विकास को निर्धारित करता है। जल की निरन्तर उपलब्धता ही कृषि विकास को गति प्रदान करती है। यह तथ्य सर्वविदित है कि जल विभाजकों के अन्तर्गत कृषि उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों में ढाल, मृदा का प्रकार व भूजल स्तर आदि की महत्वपूर्ण भूमिका परिलक्षित होती है (सिंह, 2000ए पृ.35.37)।

लाल (2000) ने जल संग्रहण प्रबन्धन के विकास के बारे में बताया है कि इससे जल की मात्रा व गुणवत्ता में वृद्धि होगी तथा विविध कार्यों हेतु जल का उपयोग हो सकेगा तथा सतही जल की मात्रा में वृद्धि होगी। आचार्य, सिंह और सागर (2002) ने बताया कि जल का उचित प्रबन्धन आज अति आवश्यक हो गया है क्योंकि जल की मांग में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। जल की गुणवत्ता में कमी से खाद्यान्न का भी अभाव हो रहा है। अतः इन सभी की आपूर्ति जल संभर के विकास द्वारा ही संभव है। नागराजन (2003) ने भारत जैसे मानसूनी जलवायु प्रदेश में सूखे का आंकलन तथा प्रबन्धन का अध्ययन किया है तथा संरक्षण की विभिन्न विधियों का उल्लेख किया है जिसमें से प्रमुख जल संभर प्रबन्धन है। जीत (2005) ने भारत के भूजल संसाधनों का अध्ययन करते हुए भूजल की उपयोगिता, प्रबन्धन व संरक्षण को ही भूजल स्तर में सुधार का उपाय माना है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि सम्भव है। नरवानी (2005) के अनुसार जल प्रबन्धन से हार्वेस्टिंग संरचनाओं का विकास सम्भव है जो सामाजिक संरचना की बनावट को प्रभावित करता है।

राय (2008) ने वाराणसी जिले में सिंचाई के लिए भूजल गुणवत्ता का मूल्यांकन किया तथा पाया कि कठोर जल में कृषि उत्पादन अधिक होता है। राठौड़ (2009) ने उदयपुर शहर की झीलों में गिरते भूजल का अध्ययन सुदूर संवेदन तकनीक के आधार पर किया है। महावर, नत्थु सिंह (2016), "जिले में कृषि भूमि उपयोग परिवर्तन (1991–2011)"। शर्मा, अमित (2016) "भूमि उपयोग परिवर्तन का एक भौगोलिक विश्लेषण (आमेर तहसील जिला जयपुर के विशेष संदर्भ में)"। जाट, बी.सी. (2000): जल ग्रहण प्रबन्धन, पोइन्टर पब्लिषर्स, जयपुर। गुर्जरए रामकुमार (2012): जल प्रबन्ध विज्ञान, पाइन्टर पब्लिषर्स, जयपुर। गुर्जरए रामकुमार (2012): जल प्रबन्ध विज्ञान, पाइन्टर पब्लिषर्स, जयपुर। पाण्डेय, भगवते (2008): गांवों में जल के बिना कल, करूक्षेत्र । प्रसाद, राजेन्द्र (2002): परिवर्तित भूमि उपयोग और भूमि अवनयन की समस्याएं – साहिबी नदी क्षेत्र।

चुरू जिलें में जल संग्रहण एवं प्रबंधन का अध्ययन प्रस्तुत साहित्य की समीक्षा के आधार पर किया गया है। साथ ही अनेक विद्वानों के उपागमों को प्रकरण रुप में विभाजित कर अध्ययन किया है।

उद्देश्य

1. चुरू जिले का वर्तमान भूमि उपयोग का प्रतिरुप प्रस्तुत करना।
2. भूजल संभाविता व गुणवत्ता का आंकलन करना।
3. वर्तमान कृषि भूमि उपयोग की विशेषताएं (2012-15) त्रिवर्षीय औसत के आधार पर सूक्ष्म जलसंभर स्तर पर प्रस्तुत करना।

4. स्थानिक स्तर पर पाये जाने वाली कृषिगत विभिन्नता को मात्रात्मक तकनीकों के अनुप्रयोग द्वारा विश्लेषण करना।
5. मुख्य कृषि संसाधन व जल आपूर्ति समस्या को दृष्टिगत रखते हुए सतत् कृषि विकास नियोजन की दिशा में कुछ सकारात्मक व प्रभावी सुझाव देना।

शोध परिकल्पनाएँ

1. अध्ययन क्षेत्र में वर्षा की घटती मात्रा एवं वर्ष में वर्षा के दिनों के निरंतर घटने से रबी फसल के क्षेत्रफल की अपेक्षा खरीब फसलों का क्षेत्रफल बढ़ता जा रहा हैं।
2. परम्परागत जल स्त्रोतों का उपयोग नहीं होने से जल संसाधन संभाविता में कमी आ रही है।
3. बदलते भूउपयोग के कारण जल बजट में बदलाव आ रहा है।

विधि तंत्र

विषय पर उपलब्ध साहित्य से संबंधित लेखों, पुस्तकों, पत्रों, प्रतिवेदनों आदि का सूक्ष्म रूप से अध्ययन किया जायेगा। शोध का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए क्षेत्र की सूचनाएँ जिलों, तहसील व ग्राम स्तर पर एकत्रित कर विशलेषित की जायेगी। उच्चावच, ढाल, भूआकृतिक सूचनाओं के लिए चुरू जिले से उपलब्ध संसाधन मानचित्रों का उपयोग किया गया है। जिला मुख्यालय से 10 वर्षों के वर्षा के समंक प्राप्त किये गये है। इसके अलावा तापमान, पवन गति सम्बंधीचर भारतीय मौसम विभाग से प्राप्त किये गये है।

केन्द्रीय भूजल विभाग, पश्चिम क्षेत्र जयपुर व राज्य भूजल विभाग, जयपुर से भूजल गुणवत्ता, मानसून पूर्व, मानसून पश्चात व भूजल स्तर का घटना–बढ़ना सम्बन्धी समंक एकत्रित किये गये व जिला मूल्यांकन प्रतिवेदन (केन्द्रीय भूजल विभाग) का भी उपयोग किया है। सामान्य भूमि उपयोग के समंक जनगणना 2011 से एवम् उन्हीं ग्रामों के कृषि सम्बन्धी आंकड़े तीन वर्षों (2012.15) के जींसवार कृषि क्षेत्र के समंक शोधार्थी द्वारा तहसील मुख्यालयों से ग्राम स्तर पर एकत्रित किये गये।

ग्राम स्तर पर एकत्रित समंको का सूक्ष्म जल संभर स्तर पर अनुपात निकाल कर विभिन्न मानचित्र ।तब ळपै 9ण्3ट द्वारा तैयार किये गये है। कृषि सम्बन्धी आंकड़े त्रिवर्षीय (2012–15) औसत आधार पर निकाले गये हैं तथा कृषि दक्षता (पदानुक्रम गणना विधि), शस्य संयोजन (दोई 1959), फसल विविधता (भाटिया 1965) का ग्राम स्तर पर मूल्यांकन किया गया है।

शोध आधारित ठोस कार्य नीति

एक ओर प्रयास के बतौर शोधार्थी द्वारा कतिपय सारगर्भित बिन्दुओं की निम्न प्रस्तुति है :–

1. जलसंभर स्तर पर भूजल के स्थान पर सतही जल संग्रहण व संरक्षण को सभी सरकारी विकास के विभिन्न स्तरीय कार्यक्रमों में प्रमुख स्थान मिलना जरूरी है। जल संरक्षण के लिए स्थानीय स्वशासन प्रणाली को जवाबदेह बनाने की आवश्यकता है। इसलिए प्राथमिकता से जोहड़, नाड़ी, तलैया, बावड़ी, एनीकट निर्माण कार्यक्रमों को समयबद्ध योजनानुसार बनाना ही एक सटीक रणनीति है।
2. सरकार को ग्राम स्तर पर कृषि सूचना केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिए, जिससे कृषकों को मण्डी के भाव की जानकारी, उन्नत बीजों का ज्ञान, जैविक कृषि की जानकारी प्राप्त होती रहे। ग्राम पंचायत को कम्प्यूटीकृत करना चाहिए। कृषक पर्यवेक्षक की नियुक्ति होनी चाहिए।
3. नियन्त्रित पशुचारण व चरागाह विकास पर पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिए। जिससे संधारणीय पशुपालन विकसित हो सके व कृषकों की आजीविका के स्तर में स्थिरता आए।
4. उपलब्ध जल के अनुकूलम उपयोग के लिए वांछनीय सिंचाई पद्धति को अपनाया जाना संधारणीय कृषि उपज के लिए अपरिहार्य है। अतः कृषकों व कृषि नियोजनकर्ताओं को फव्वारा सिंचाई विधि एवम् बूंद–बूंद सिंचाई विधि को अपनाने पर पुरजोर ध्यान देना ही पड़ेगा।
5. भूमि उपयुक्तता के आधार पर शस्य व शस्य चक्र का विकास किया जाना चाहिए। जिसेस मृदा तत्वों की उचित मात्र बनी राहती है। जो मृदा की उत्पादकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण है। शस्य चक्रण व कृषि सम्बन्धी अनुभव व जानकारी को पुरानी पीढ़ी के कृषकों द्वारा नवीन पीढ़ी के कृषकों को प्रदान करने की आवश्यकता है।
6. राज्य की सबसे प्रमुख समस्या तीव्रगति से गिरता भू–जल स्तर है जिसके लिए वर्षाजल को प्रबन्धित करके पुनर्भरण दर को तीव्र किया जाये तथा सम्पूर्ण जल संसाधनों की जलकुण्डली बनायी जाये व कई वर्षों से लम्बित पड़ी प्रदेश की जलनीति क्रियान्वित की जाये।
7. मृदा अपरदन पर प्रभावी रोक लगाई जाये एवं कृषि योग्य भूमि पर समोच्च कृषि की जाये एवं अकृषि भूमि पर समोच्च वानस्पतिक अवरोधक निर्मित करके कृषि की जाये, इसके साथ ही प्रवाह का उचित उपचार भी किया जाये।
8. राज्य के जल संसाधनों के असमान रूप से वितरित होने के कारण उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए जहां जल की कमी है वहां उत्तरप्रदेश, हरियाणा स`जल लिया जाये एवं जहां जलाधिक्य है वहां जल संग्रह संरचनाओं का निर्माण किया जाये, इसके साथ ही बाढ़ पर रोक लगायी जाये व अपवाह को नियन्त्रित किया जाये, जिस प्रकार दूसरे राज्यों से पानी लेने का सुझाव दिया जाता है। केन्द्रीय जल एवं विद्युत आयोग द्वारा प्रस्तावित राज्य के नदी जल स्थानान्तरण प्रस्ताव को शीघ्र क्रियान्वित किया जाये।
9. मरूस्थलीकरण के प्रसार को नियन्त्रित करने के लिए वनीकरण को गति दी जाये। बालूका स्तूप स्थिरीकरण किया जाये। कणाबन्दी की जाये। इनके अतिरिक्त अतिचारण पर नियन्त्रण लगाया जाये व अकृषि भूमि पर चरागाह विकसित किये जायें।
10. राज्य का मानव संसाधन विकसित नहीं है। संसाधनों के वैज्ञानिक एवं उपयुक्त दोहन के लिए मानव संसाधन का विकास किया जाना आवश्यक है। भारत में साक्षरता दर 38.81 प्रतिशत है, 72 प्रतिशत लोग

गांवों में निवास करते है एवं कृषि में संलग्न हैं जो परम्परागत ज्ञान को अपना आत्मविश्वास मानते हैं एवं आगे नहीं बढ़ पाते हैं। अतः मानव संसाधन विकास अति अनिवार्य तत्त्व है।

11. राज्य में विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत संचालित 'जलग्रहण विकास कार्यक्रम' अभी तक आवश्यक सीमा तक त्वरित नहीं हो पाये हैं जबकि एक योजना 'समन्वित जलग्रहण विकास परियोजना' तो समाप्त हो गई है। इस प्रकार इस कार्यक्रम को उचित गति प्रदान की जाये।
12. भूमि संसाधन अवनयन को नियन्त्रित किया जाये एवं अपरदनात्मक गतिविधियों पर रोक लगाई जाये। इसके लिए कम निवेश एवं स्थानीय परम्परागत (स्वदेशी) तकनीकी ज्ञान के आधार पर विकसित विधियां अपनाई जायें। इनमें अपवाह रेखा उपचार, किनारा स्थिरीकरण, घनी झाड़ी अवरोधक बांध, ढीले पत्थरों से निर्मित रोक बांध, आदि प्रमुख हैं।
13. बंजर भूमि का विकास किया जाना चाहिए। इस हेतु 'जलग्रहण विकास कार्यक्रम' के अन्तर्गत अनेक संरक्षणात्मक गतिविधियां सम्पादित की जाती हैं।

शोध की सीमाएँ

1. कृषक अपनी वार्षिक उपजों का ब्यौरा नहीं रखते। अतः तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी विश्वसनीय समंक उपलब्ध हो पाना सम्भव नहीं है।
2. अध्ययन क्षेत्र में उतरदाताओं से मिली अन्य आर्थिक पहलुओं से सम्बन्धी समंकों की विश्वसनीयता भी चुनौतीपूर्ण है।
3. प्रस्तुत शोध में जनगणना 2001 पर आधारित समंक व त्रि–वर्षीय औसत समंकों व साथ ही सुदूर संवेदन से प्राप्त निर्वचन के बीच मानक वर्गीकरण करना शोधार्थी के लिए कठिन रहा है।
4. प्रतिचयन विधि से संग्रहित समंकों के उचित प्रतिनिधित्व की अपनी सीमाएं हैं।
5. सांख्यिकीय तकनीकों से अन्तर्दृष्टि तो मिलती है किंतु शोधार्थी को सकारण सटीक व्याख्या ढूंढ पाना कठिन रहा है। चूंकि क्षेत्र से प्राप्त समंक पर्याप्त प्रतिनिधित्व करने वाले नहीं माने जा सकते।
6. मृदा व जल पर अधिक क्रमिक व गहन सर्वेक्षण पर आधारित समंकों का अभाव रहा है। एक शोधार्थी के लिए आवश्यक समंक जुटाना उसके अकेले की क्षमता व सीमा में नहीं आते।

अन्ततः शोधार्थी महसूस करता है कि शोधार्थी के संसाधनों व समय की अपनी सीमा न हो तभी गहन विश्लेषणात्मक शोधकार्य करना सम्भव है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

कृषि एवम् जल संसाधनों के गहन विश्लेषण व तद्नुकूल नियोजन पर किसी भी क्षेत्र की जनसंख्या का सतत् विकास निर्भर करता है। भूमि संसाधनों की महता जल संसाधनों पर निर्भर करती है। इसी कारण कृषि व जल संसाधनों का अध्ययन अर्द्धशुष्क व शुष्क क्षेत्रों में और भी सार्थक है। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में भूमि अवनयन के कारण चारागाह एवम् जल गुणवता का तीव्र ह्रास हो रहा है। अध्ययन क्षेत्र में भूगर्भिक संरचनाओं में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगत होती है। जलोढ़क, बालुका पत्थर (जोधपुर, नागौर व तृतीयक ग्रुप) चूना पत्थर, ग्रेनाइट, रायोलाइट जैसी भूगर्भिक संरचनाएं पायी जाती है। भूआकृतिक इकाईयों की दृष्टि से सबसे अधिक वातोढ़ स्थलाकृति जिसमें से बालुका मैदान पाया जाता है जो कि अध्ययन क्षेत्र के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र पर है। इसके अलावा जलोढ़ मैदान मात्र 6.69 प्रतिशत क्षेत्र पर है जो कि अध्ययन क्षेत्र के पूर्व में स्थित राजगढ़ तहसील के पूर्व में है। अध्ययन क्षेत्र का ढ़ाल लगभग समतल है दक्षिण में लगभग कुछ स्थानों पर 10 से 30 डिग्री के मध्य पाया जाता है। अध्ययन क्षेत्र की समुद्र तल से अधिकतम व न्यूनतम ऊंचाई क्रमशः 477 व 186 मीटर है। ऊंचाई दक्षिण से उतर की ओर बढ़ती है।

जलवायु की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र अर्द्धशुष्क जलवायु के अन्तर्गत आता है। जून सबसे गर्म महीना व जनवरी सबसे ठण्ड़ा महीना है। अध्ययन क्षेत्र में अधिकतम तथा निम्नतम तापमान क्रमशः 33.77^0 से तथा 14.36^0 से है। ग्रीष्म ऋतु मार्च से मध्य जून, वर्षा ऋतु मध्य जून से सितम्बर, शीत ऋतु अक्टूबर से फरवरी तक रहती है। वर्षा मुख्यतया दक्षिणी–पश्चिमी मानसून से होती है जो सामान्यतः जून के अंतिम सप्ताह से अगस्त महीने तक रहती है। अध्ययन क्षेत्र में माध्य वार्षिक वर्षा 115 मिमी से 688.60 मिमी के बीच परिवर्तित होती रहती है। वर्षा की असमान प्रकृति पूरे अध्ययन क्षेत्र में देखी जा सकती है। वनों का कम प्रतिशत अध्ययन क्षेत्र में वर्षा के वितरण तथा कृषि प्रारूप को प्रभावित करता है। अध्ययन क्षेत्र के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 2 प्रतिशत से कम क्षेत्र में वनों, घास व झाड़ियों का विस्तार है। यहां पाई जाने वाली मुख्य वनस्पति बबूल है। मृदा के दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र के लगभग 99 प्रतिशत क्षेत्र में मोटी बलुई मृदा पाई जाती है जिसमें पानी की रोक रखने की क्षमता बिल्कुल कम होती है। मृदा का ढ़ाल अध्ययन क्षेत्र में समतल प्रकार का है। उत्पादकता के दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र की लगभग सम्पूर्ण मृदा अल्प एवम् नगण्य है। अध्ययन क्षेत्र का परिवेश मरूस्थलीय है जिस कारण बालुका स्तूप क्षेत्रों एवम् वातोढ़ मैदानों में मृदा का अपरदन अति तीव्र गति से होता है जिसमें यांत्रिक या भौतिक अपरदन अधिक तीव्र होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Acharya, S.S., Singh, S. and Sagar, V.2002. Sustainable Agricultural Poverty and Food Security. Volume-2, Asian Society Of Agricultural Economics, Seoul. Rawat Publication, Jaipur and New Delhi, pp. 170-79.*
2. *Agarwal, G.D. 1997. An Evaluation Report of Water Conservation efforts of Tarun Bharat Sangh in 36 villages of Alwar District.*
3. *Biswas, A.K., Mohammad, J. and Stout, G.E. 1993. Water for Sustainable Development in 21st Century, Oxford University Press, Oxford, pp. 72-79.*
4. *Brooks, K.N., Folliott, P.F., Gregersen, H.M. and De Bango, L.F.1997. Hydrology and The Management of Watersheds, 2nd edition, Iowa University Press, Iowa, pp. 273-275.*

5. *Government of India. 1990. Watershed Atlas of India. All India Soil and Land Use Survey (AISLUS), Department of Agriculture Co-operations. Ministry of Agriculture, New Delhi.*
6. *Jeet, I. 2005. Ground Water Resources of India – Occurrence, Utilization and Management. Mittal Publication, New Delhi, pp. 51-56.*
7. *Lal, S. 2000. Watershed Planning and Management. Yash Publishing House, Bikaner, pp. 35-37.*
8. *Mohil, A.D. 2000. Water Resource Management in 21st Century. In International Conference on Managing Natural Resource for Sustainable Agricultural Production in the 21st Century. Journal of Applied hydrolog, Vol. (XV), pp. 8-17.*
9. *Nagrajan, A. 2003. Drought – Assessment, Monitoring, Management, Resource Conservation. Capital Publishing Company, New Delhi, pp. 270-275.*
10. *Narwani, G.S. 2005. Water Management. Rawat Publication, Jaipur, pp. 27-36.*
11. *Power, S., Makugu, P. and Qarlon, A. 1997. Watershed Development. Participatory and Sustainable Development, Proceeding of Danida's Second International Workshop on Watershed Management Iringa Region, Tanzania, pp. 22-24.*
12. *Rai, V.K. 2008. Ground Water Quality Assessment for Irrigation in Varanasi and Its Environs. Annals of the National Association of Geographers, India. Vol. xxviii (1), pp. 73-75.*
13. *Rathore, N.S. 2009. Application of Multi Temporal Satellite Data for the Study of Water Resources Problems in Udaipur Basins, South Rajasthan. Annals of the National Association of Geographers, India. Vol.xxx, (I), pp. 72-74.*
14. *Satish, S. and Sunder, A. 1990. People Participation and Irrigation Management. Commonwealth Publications, New Delhi, pp. 151-172.*
15. *Singh, Raj Vir. 2000. Watershed Planning and Management. Yash Publishing House, Bikaner, pp. 35-37.*
16. *Subrahmanyam, A.R. 1997. Water Balance and Agriculture in Delta Region of Andhra Pradesh. Deccan Geographea, Vol. 17(3), pp. 594-655.*
17. *Tideman, E.M. 2000. Watershed Management : Guidelines for Indian Conditions, Omega Scientific Publishers, New Delhi, p. 36.*
18. *Tideman, E.M. 2000. Watershed Management : Guidelines for Indian Conditions, Omega Scientific Publishers, New Delhi, p. 54.*
19. *देव, ई. 1953, खेती में पानी का बढ़ता अभाव और नई सिंचाई प्रणालियों का विकास. कुरुक्षेत्रा पत्रिाका, अंक 8ए पृ. 15.*
20. *पाठक, ग. कु. 2005, भारतीय जीवन शैली में जल प्रबन्धन। भागीरथ पत्रिाका, नई दिल्ली, अंक–1, पृ.1.*
21. *पाठक, ग. कु. 2005, भारतीय जीवन शैली में जल प्रबन्धन। भागीरथ पत्रिाका, नई दिल्ली, अंक–1, पृ. 39.*
22. *मोदी, अ. 2007, बढ़ता जल संकट गंभीर चुनौती। कुरुक्षेत्रा पत्रिाका, अंक 7 पृ. 8.*
23. *जाट, बी.सी. (2000): जल ग्रहण प्रबन्धन, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर।*
24. *गुर्जरए रामकुमार (2012): जल प्रबन्ध विज्ञान, पाइन्टर पब्लिश्झर्स, जयपुर।*
25. *गुर्जरए रामकुमार (2012): जल प्रबन्ध विज्ञान, पाइन्टर पब्लिश्झर्स, जयपुर।*
26. *पाण्डेय, भगवते (2008): गांवों में जल के बिना कल, करूक्षेत्र ।*
27. *प्रसाद, राजेन्द्र (2002): परिवर्तित भूमि उपयोग और भूमि अवनयन की समस्याएं – साहिबी नदी क्षेत्र।*